दो कलाकार

• मन्नू भण्डारी

अन्तराक्षरी

■ कहानी माला - 19

दो कलाकार

● मन्नू भण्डारी

"ए रूनी, उठ," और चादर खींचकर, चित्रा ने सोती हुई अरुणा को झकझोरकर उठा दिया।

"अरे, क्या है?" आँख मलते हुए थोड़े खिझलाहट-भरी आवाज में अरुणा ने पूछा। चित्रा उसका हाथ पकड़कर खींचती हुई ले गयी और अपने नये बनाये हुए चित्र के सामने ले जाकर खड़ा करके बोली, "देख, मेरा चित्र पूरा हो गया।"

"ओह! तो इसे दिखाने के लिए तूने मेरी नींद खराब कर दी। बदतमीज कहीं की!"

"अरे, जरा इस चित्र को तो देख। न पा गयी पहला इनाम तो नाम बदल देना।" चित्र को चारों ओर से घुमाते हुए अरुणा बोली, "किधर से देखूँ, यह तो बता दे? हजार बार तुझसे कहा कि जिसका चित्र बनाये उसका नाम लिख दिया कर, जिससे गलतफहमी न हुआ करे, वरना तू बनाये हाथी और हम समझें उल्लू।" फिर तस्वीर पर आँख गड़ाते हुए बोली, " किसी तरह नहीं समझ पा रही हूँ कि चौरासी लाख योनियों में से आखिर यह किस जीव की तस्वीर है?"

" तो आपको यह कोई जीव नज़र आ रहा है? अरे, जरा अच्छी तरह देख और समझने की कोशिश कर।"

" अरे, यह क्या? इसमें तो सड़क, आदमी, ट्राम, बस, मोटर, मकान सब एक-दूसरे पर चढ़ रहे हैं, मानो सबकी खिचड़ी पकाकर रख दी हो। क्या घनचक्कर बनाया है?" और उसने वह चित्र रख दिया।

"जरा सोचकर बता कि यह किसका प्रतीक है?"

"तेरी बेवकूफी का। आयी है बड़ी प्रतीकवाली।"

"अरे, जनाब, यह चित्र आज के जीवन में चल रही उलझन की तरफ ध्यान खींचता है।"

"समझीं, मुझे तो यह चित्र तेरे दिमाग में चल रही उलझन ही लग रही है। बिना मतलब ज़िन्दगी खराब कर रही है।" और अरुणा मुँह धोने के लिए बाहर चली गयी। लौटी तो देखा, तीन-चार बच्चे उसके कमरे के दरवाज़े पर खड़े उसकी राह देख रहे हैं। आते ही बोले, "दीदी! सब बच्चे आकर बैठ गये, चलिए।"

"आ गये सब बच्चे? अच्छा चलो, मैं अभी आयी।" बच्चे दौड़ पड़े।

"क्या ये बन्दर पाल रखे हैं तूने भी?" फिर जरा हँसकर चित्रा बोली," एक दिन तेरी पाठशाला का चित्र बनाना होगा। ज़रा लोगों को दिखाया ही करेंगे कि हमारी एक ऐसी मित्र साहब थीं जो सारे दाइयों, चपरासियों और दुनिया भर के बच्चों को पढ़ा-पढ़ाकर ही अपने को भारी पण्डिता और समाज-सेविका समझती थी।"

"जा—जा समझते हैं तो समझते हैं। तू जाकर सारी दुनिया में ढिंढोरा पिटाना, हमें कोई शरम है क्या? तेरी तरह लकीरें खींचकर तो समय बर्बाद नहीं करते।" और पैर में चप्पल डालकर वह बाहर मैदान में चली गयी, जहाँ एक छोटी-सी पाठशाला बनी हुई थी।

रात के दस बजे थे। सारे छात्रावास की बत्तियाँ हमेशा की तरह बुझ चुकी थी। ऊपर के एक तल्ले पर अँधेरे में ही खुसर—फुसर चल रही थी। रविवार के दिन तो यों ही छुट्टी होती है। दूसरे, दिन के समय में काफी नींद निकाल ली जाती थी, सो दस बजे लड़कियों को किसी तरह भी नींद नहीं आती थी। तभी छात्रावास के फाटक में जलती हुई टॉर्च लिए कोई घुसा। अपने कमरे की खिड़की में से झाँकते हुए सविता ने कहा, "ठाठ तो छात्रावास में बस अरुणा

ही के हैं, रात नौ बजे लौटो, दस बजे लौटो, कोई बंधन नहीं। हम लोग तो दस के बाद बत्ती भी नहीं जला सकते।''

''लौट आई अरुणा दी? आज सवेरे से ही वे बड़ी परेशान थी। फुलिया दाई का बच्चा बड़ा बीमार था, दोपहर से वे उसी के यहाँ बैठी थी। पता नहीं, क्या हुआ बेचारे का?'' शीला ने ठंडी साँस भरते हुए कहा।

''तू बड़ी भक्त है अरुणा दी की!''

''उनके जैसे गुण अपना ले तो तेरी भी भक्त हो जाऊँगी।''

''मैं कहती हूँ, उन्हें यही सब करना है तो कहीं और रहें, छात्रावास में रहकर यह जो नवाबी चलाती हैं, सो तो हमसे बर्दाश्त नहीं होती सारी लड़कियाँ डरती हैं तो कुछ कहती नहीं, पर प्रिन्सिपल* और वार्डन* तक रोब खाती है इनका, तभी तो सब प्रकार की छूट दे रखी है।''

''तू भी जिस दिन हाड़ तोड़कर दूसरों के लिए यों मेहनत करने लग जायेगी न, उस दिन तेरा भी सब रोब खाने लगेंगे। पर तुम्हें तो सजने – सवरने से ही फुर्सत नहीं मिलती, दूसरों के लिए क्या खाक़ काम करोगी।''

''अच्छा–अच्छा चल, अपना भाषण अपने पास रख।''

अरुणा अपने कमरे में घुसी तो बहुत ही धीरे से जिससे चित्रा की नींद न खराब हो। पर चित्रा जग ही रही थी। दोपहर से अरुणा बिना खाये-पिये बाहर थी, उसे नींद कैसे आती भला? मेस* से उसका खाना लेकर उसे मेज पर ढ़ककर रख दिया था। अरुणा के आते ही वह उठ-बैठी और पूछा,''बड़ी देर लग गयी, क्या हुआ रूनी!''

''वह बच्चा नहीं बचा, चित्रा। किसी तरह उसे नहीं बचा सके।'' और उसका स्वर किसी गहरे दुःख में डूब गया।

चित्रा ने माचिस लेकर लालटेन जलाया और स्टोव जलाने लगी, खाना

---

* प्रिन्सिपल – प्रधानाध्यापक *वार्डन – छात्रावास की प्रधान *मेस – छात्रावास का भोजन कक्ष

गरम करने के लिए। तभी अरुणा ने कहा, ''रहने दे चित्रा, मैं खाऊँगी नहीं, मुझे ज़रा भी भूख नहीं है।'' और उसकी आँखें फिर छलछला आई।

बहुत ही स्नेह से अरुणा की पीठ थपथपाते हुए चित्रा ने कहा, ''जो होना था सो हो गया, अब भूखे रहने से क्या होगा, थोड़ा-बहुत खा ले।''

''नहीं चित्रा, अब रहने दे, बस तू लालटेन बुझा दे।''

उसके बाद दो-तीन दिन तक अरुणा बहुत ही उदास रही, लेकिन समय के साथ-साथ वह दुःख भी जाता रहा, और सब काम ज्यों-का-त्यों चलने लगा।

चार बजते ही कॉलेज से सारी लड़कियाँ लौट आई पर अरुणा नहीं लौटी। चित्रा चाय के लिए उसका इन्तज़ार कर रही थी। ''पता नहीं कहाँ-कहाँ अटक जाती है, बस इसके पीछे बैठे रहा करो।''

''अरे, क्यों बड़—बड़ कर रही है। ले मैं आ गई। चल बना चाय।''

''तेरे मनोज की चिट्ठी आई है।''

''कहाँ, तूने तो पढ़ ही ली होगी फाड़कर।''

''चल हट, तुम्हारी चिट्ठियों में रहता ही क्या है जो कोई पढ़े। बड़े-बड़े आदर्श की बातें, मानो खत न हुआ भाषण हुआ।''

''अच्छा-अच्छा, तू लिखा करना रसभरी चिट्ठियाँ, हमें तो वह सब आता नहीं।'' वह लिफाफा फाड़कर पत्र पढ़ने लगी। जब उसका पत्र समाप्त हो गया तो चित्रा बोली, ''आज पिताजी जी का पत्र आया है, लिखा है जैसे ही यहाँ की पढ़ाई खत्म हो जाएगी, मैं विदेश जा सकती हूँ। मैं तो जानती थी, पिताजी कभी मना नहीं करेंगे।''

''हाँ भाई धनी पिता की इकलौती बिटिया ठहरी। तेरी इच्छा कभी टाली जा सकती है। पर सच कहती हूँ, मुझे तो यह सारी कला इतनी बेमतलब लगती है कि बता नहीं सकती। किस काम की ऐसी कला, जो आदमी को आदमी न रहने दे।''

"तो तू मुझे आदमी नहीं समझती, क्यों? अरे, इस लगन को देखकर ही तो गुरुजी कहते हैं कि वह समय दूर नहीं, जब हिन्दुस्तान के कोने-कोने में मेरी शोहरत गूँज उठेगी। अमृता शेरगिल* की तरह मेरा भी नाम गूँज उठे, बस यही तमन्ना है।"

"कागज़ पर इन बेज़ान चित्रों को बनाने की बजाय दो-चार की ज़िन्दगी क्यों नहीं बना देती!"

"वह काम तो तेरे और मनोज के लिए छोड़ दिया है। तुम दोनों ब्याह कर लो और फिर जल्दी से सारी दुनिया का कल्याण करने के लिए झण्डा लेकर निकल पड़ना।" और चित्रा हँस पड़ी। फिर बोली–

"अच्छा, यह बता कि तेरे यह सब करने से ही क्या हो जायेगा? तुने अपनी अनोखी पाठशाला में दस-बीस बच्चे पढ़ा दिये, तो क्या निरक्षरता मिट जायगा, या झोंपड़ी में कुछ औरतों को हुनर सिखाकर कुछ कमाने लायक बना दिया तो उससे गरीबी मिट जायगी? अरे, यह सब काम एक के किये होते नहीं।

जब तक समाज का सारा ढाँचा नहीं बदलता तब तक कुछ होने का नहीं, और ढाँचा ही बदल गया तो तेरे-मेरे कुछ करने की जरुरत नहीं, सब अपने-आप ही हो जायेगा।"

तीन दिन से तेज वर्षा हो रही थी। रोज अख़बारों में बाढ़ की ख़बरें आती थीं। बाढ़-पीड़ितों की दशा बिगड़ती जा रही थी।

"आज शाम को एक स्वयंसेवकों का दल जा रहा है, प्रिन्सिपल से अनुमति ले ली, मैं भी उनके साथ जा रही हूँ।" शाम को अरुणा चली गयी। पन्द्रह दिन बाद वह लौटी तो उसकी हालत काफी खस्ता हो गयी थी। सूरत ऐसी निकल आयी थी मानो छः महीने से बीमार हो।

शाम को चित्रा गुरुदेव के पास से लौटी तो अरुणा को देखकर बड़ी खुश

* अमृता शेरगिल–मशहूर चित्रकार

हुई। ''अच्छा हुआ, तू लौट आयी। मैं तो सोच रही थी कहीं तू बाढ़-पीड़ितों की सेवा करती ही रह जाय और मैं जाने से पहले तुझसे मिल भी न पाऊँ।''

''क्यों, तेरा जाने का तय हो गया?''

''हाँ, अगले बुध को मैं घर जाऊँगी और बस एक सप्ताह बाद हिन्दुस्तान की सीमा के बाहर पहुँच जाऊँगी।'' उल्लास उसके स्वर में छलका पड़ रहा था।

''सच कह रही है, तू चली जायगी चित्रा! छः साल से तेरे साथ रहते-रहते यह बात ही मैं तो भूल गयी कि कभी हमको अलग भी होना पड़ेगा। तू चली जायेगी तो मैं कैसे रहूँगी?''

''अरे, दो महीने बाद शादी कर लेगी, फिर याद भी न रहेगा कि कौन कम्बखत थी चित्रा! बड़ी लालसा थी तेरी शादी में आने की, पर अब तो आ नहीं सकूँगी। अच्छी तरह शादी करना, दोनों मिलकर सारे समाज का और सारे संसार का कल्याण करना।''

आज चित्रा को जाना था। हॉस्टल से उसे बड़ी शानदार विदाई मिली थी। अरुणा सवेरे से ही उसका सारा सामान ठीक कर रही थी। एक-एक करके चित्रा सबसे मिल आयी। बस गुरुजी के घर की तरफ चल पड़ी। तीन बज गये, पर वह लौटी नहीं। अरुणा उसका सारा काम खत्म करके उसकी राह देख रही थी। और भी कई लड़कियाँ वहाँ जमा थीं, कुछ बार-बार आकर पूछ जाती थीं, चित्रा लौटी या नहीं। पाँच बजे की गाड़ी से वह जानेवाली है। अरुणा ने सोचा, वह खुद जाकर देख आये कि आखिर बात क्या हो गयी। तभी हड़बड़ाती-सी चित्रा कमरे में आई, ''बड़ी देर हो गयी ना! अरे क्या करूँ, बस, कुछ ऐसा हो गया कि रुकना ही पड़ा।''

''आखिर क्या हो गया ऐसा, जो रुकना ही पड़ा, सुनें तो।'' दो-तीन लड़कियाँ एक साथ बोलीं।

''गर्ग की दुकान के सामने पेड़ के नीचे अक्सर एक भिखारिनी बैठी रहा करती थी ना, लौटी तो देखा कि वह वहीं मरी पड़ी है और उसके दोनों बच्चे उसके सूखे शरीर से चिपककर बुरी तरह रो रहे हैं। जाने क्या था उस सारे दृश्य में कि मैं अपने को रोक नहीं सकी—जल्दी ही उसे एक कागज़ पर उतार लिया। बस इसी में इतनी देर हो गयी।'' चर्चा इसी पर चल पड़ी, ''कैसे मर गयी, कल तो उसे देखा था।'' किसी ने कहा, ''अरे, जिन्दगी का क्या भरोसा, मौत कहकर थोड़े आती है।'' आदि-आदि। पर इस सारी चर्चा से अरुणा कब खिसक गयी, कोई जान ही नहीं पाया।

साढ़े चार बजे और चित्रा हॉस्टल के फाटक पर आ गयी, पर तब तक अरुणा का कहीं पता नहीं था। बहुत सारी लड़कियाँ उसे छोड़ने को स्टेशन आयीं, पर चित्रा की आँखे बराबर अरुणा को ढूँढ़ रही थीं। उसे पूरा विश्वास था कि वह इस विदाई की वेला में उससे मिलने जरुर आयेगी। पाँच भी बज गये, रेल चल पड़ी, अनेक रुमालों ने हिल-हिलकर चित्रा को विदाई दी, पर उसकी आँसू-भरी आँखें किसी और को ही ढूँढ़ रही थीं—पर अरुणा न आयी सो न आयी।

विदेश जाकर चित्रा तन—मन से अपने काम में जुट गयी। विदेशों में उसके चित्रों की धूम मच गयी। भिखमंगी और दो अनाथ बच्चों के उस चित्र के बखान कई अखबारों में हुए। नाम और शोहरत पाकर चित्रा जैसे अपना पिछला सबकुछ भूल गयी। पहले साल तो अरुणा और उसके बीच चिट्ठियों का लगातार आनाजाना लगा रहा। फिर कम होते-होते एकदम बन्द हो गया। पिछले एक साल से तो उसे यह भी नहीं मालूम कि वह कहाँ है। नयी कल्पनाएँ और नये—नये विचार उसे चित्र बनाने की प्रेरणा देते और वह उन्हीं में खोयी रहती। उसके चित्रों की प्रदर्शनियाँ होतीं। अनेक प्रतियोगिताओं में उसका 'अनाथ' शीर्षकवाला चित्र पहला इनाम पा चुका था। जाने क्या था उस चित्र में, जो देखता, वही

हैरान रह जाता। दुःख और गरीबी जैसे सामने आकर खड़ी थी। तीन साल बाद जब वह भारत लौटी तो बड़ा स्वागत हुआ उसका। अखबारों में उसकी कला पर, उसके जीवन पर अनेक लेख छपे। पिता अपनी इकलौती बिटिया की इस कामयाबी पर बहुत खुश थे—समझ नही पा रहे थे कि उसे कहाँ-कहाँ उठायें, बिठायें। दिल्ली में उसके चित्रो की शानदार प्रदर्शनी हुई। उस प्रदर्शनी को देखने के लिए जनता उमड़ पड़ी थी, भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही थी और चित्रा को लग रहा था, जैसे उसके सपने सच हो गये।

भीड़-भाड़ में अचानक उसकी भेंट अरुणा से हो गयी। "रुनी!" कहकर वह भीड़ को भूलकर अरुणा के गले से लिपट गयी। "तुझे कब से चित्र देखने का शौक हो गया, रुनी!"

"चित्रों को नहीं, चित्रा को देखने आयी थी। तू तो एकदम भूल ही गयी।"

"अरे, ये बच्चे किसके है?" दो प्यारे से बच्चे अरुणा से सटे खड़े थे। लड़के की उम्र दस की होगी तो लड़की की कोई आठ।

"मेरे बच्चे हैं, और किसके! ये तुम्हारी चित्रा मासी हैं, नमस्ते करो, अपनी मासी को।" अरुणा ने आदेश दिया।

बच्चों ने बड़ी अदा से नमस्ते किया। पर चित्रा हैरान होकर कभी उनका और कभी अरुणा का मुँह देख रही थी। वह सारी बात का कुछ तुक नहीं मिला पा रही थी। तभी अरुणा ने टोका, "कैसी मासी है, प्यार तो कर।" और चित्रा ने दोनों के सिर पर हाथ फेरा। प्यार का जरा-सा सहारा पाकर लड़की चित्रा की गोदी में जा चढ़ी। अरुणा ने कहा, "तुम्हारी ये मासी बहुत अच्छी तस्वीरें बनाती हैं, ये सारी तस्वीरें इन्हीं की बनायी हुई हैं।"

"सच?" आश्चर्य से बच्ची बोल पड़ी। "तब तो मासी, तुम जरूर चित्रकला में पहला नम्बर लाती होगी। मैं भी पहला नम्बर लाती हूँ—तुम हमारे घर आओगी तो अपनी कॉपी दिखाऊँगी।" बच्ची के स्वर में मुकाबले की भावना थी। चित्रा

और अरुणा इस बात पर हँस पड़ीं।

''आप हमें सब तस्वीरें दिखाइये मासी, समझा-समझाकर।'' बच्चे ने फरमाइश की। चित्रा समझाती तो क्या, यों ही तस्वीरें दिखाने लगी। घूमते–घूमते वे उसी भिखारिनीवाली तस्वीर के सामने आ पहुँचे। चित्रा ने कहा,''यही वह तस्वीर है रूनी, जिसने मुझे इतनी प्रसिद्धि दी।''

''ये बच्चे रो क्यों रहे हैं मासी?'' तस्वीर को ध्यान से देखकर बालिका ने कहा।

''इनकी माँ मर गयी, देखती नहीं मरी पड़ी है। इतना भी नहीं समझती!'' बालक ने मौका पाते ही अपने बड़प्पन की छाप लगायी।

''ये सचमुच के बच्चे थे मासी?''–बालिका ने पूछा।

''अरे सचमुच के बच्चों को देखकर ही तो बनायी थी यह तस्वीर।''

''हाय राम! इनकी माँ मर गयी तो फिर इन बच्चों का क्या हुआ?'' बालक ने पूछा।

''मासी, हमें ऐसी तस्वीर नहीं, अच्छी-अच्छी तस्वीरें दिखाओ, राजा-रानी की, परियों की–'' उस तस्वीर को और देर देखना बच्ची के लिए भारी पड़ रहा था। तभी अरुणा के पति आ पहुँचे। परिचय हुआ। साधारण बातचीत के बाद अरुणा ने दोनों बच्चों को उसके हवाले करते हुए कहा,''आप जरा बच्चों को प्रदर्शनी दिखाइये, मैं चित्रा को लेकर घर चलती हूँ।''

बच्चे इच्छा न रहते हुए भी पिता के साथ विदा हुए। चित्रा को दोनों बच्चे बड़े ही प्यारे लगे। वह उन्हें एकटक देखती रही, फिर पूछा,''सच-सच बता रूनी! ये प्यारे-प्यारे बच्चे किसके हैं।

''कहा तो, मेरे।'' अरुणा ने हँसते हुए कहा।

''अरे, बताओ ना! मुझे ही बेवकूफ बनाने चली है।''

एक पल रुककर अरुणा ने कहा, ''बता दूं?'' और फिर उस भिखारिनीवाले

चित्र के दोनों बच्चों पर अँगुली रखकर बोली, "ये ही वे दोनों बच्चे हैं।"

"क्याऽऽऽ!" हैरानी से चित्रा की आँखें फैली-की-फैली रह गयी।

"क्या सोच रही हैं, चित्रा?"

"कुछ नहीं—मैं....मैं सोच रही थी कि...."पर शब्द शायद उसके विचारों में ही खो गये।

अन्ताक्षरी का ये अंक आपको कैसा लगा। अपने विचार और सुझाव जल्द से जल्द भेजें।

शिवसिंह नयाल, अनीता
'अलारिप्पु'
बी-६/६२, पहली मंज़िल, सफदरजंग इन्कलेव,
नई दिल्ली-११००२६. दूरभाष : ६०६३२७

ज्योति लेजर टाइपसेटिंग
३/१ ईस्ट गुरुअंगद नगर, दिल्ली-६१